समानुभूति

२४ जून, २०२२

अमी बन्सल और गरिमा बोरवणकर द्वारा लिखित व्याख्या

भाग २

समानुभूति।

यह ऐसा सद्गुण है जिसका स्वभाव जल के समान है, पारदर्शी और निर्मल। जब आपके प्रति किसी व्यक्ति का व्यवहार समानुभूति से पूरित हो, तो आप उसे देख सकते हैं, आप उसे महसूस कर सकते हैं। और जब आप उनसे समानुभूति से पूरित व्यवहार करते हैं, तो वे भी उसे देख सकते हैं, उसे महसूस कर सकते हैं। हमदर्दी को बलपूर्वक व्यक्त नहीं किया जा सकता न ही उसका ढोंग किया जा सकता है—वह या तो प्रकट है या नहीं है।

इसके बावजूद, हम इस सद्गुण के गहन सत्त्वों और अर्थों का जितना अधिक अन्वेषण करते जाते हैं, उतने ही अधिक हमें समानुभूति के विभिन्न रूप मिलते जाते हैं जिनमें यह प्रकट होती है। कभी यह बहुत स्पष्टता से प्रकट होती है; और कभी यह बहुत सूक्ष्म प्रतीत होती है। कभी यह उत्साह व उल्लास से भरपूर, हल्कापन लिए व प्रकाश से चमचमाने वाली होती है तो कभी ऐसी लगती है जैसे इसकी थाह पाई ही नहीं जा सकती। कभी यह प्रभावी रूप से निराली प्रतीत होती है तो कभी यह बहुत सरल व सुगम-सुलभ होती है। ऐसे अवसर भी हो सकते हैं जब यह सद्गुण इतना शानदार और रहस्यपूर्ण लगता है मानो पहुँच के बाहर हो। उन क्षणों में हो सकता है, आप सोच में पड़ जाएँ, “क्या मैं कभी इस सद्गुण को समझ पाऊँगा और इसका अनुपालन कर सकूँगा?” और अन्य अवसरों पर, हो सकता है आपको यह इतनी साफ़-साफ़ दिखाई दे कि आप तुरन्त ही समझ जाते हैं कि इसे अपने जीवन में किस प्रकार लागू करना है। किसी भी समय में, आप जिस भी रूप में इसका अनुभव करें, समानुभूति सतत आपके अन्तर में स्पन्दित हो रही है।

इस व्याख्या के भाग १ में हमने समानुभूति के सद्गुण के दो पहलुओं को गहराई से देखा और जाना कि यह समानता और ऐक्य की समझ से उदित होती है, इस ज्ञान से कि हर व्यक्ति व हर वस्तु एक ही

सार-तत्त्व से, परम आत्मा से उपजती है। हमने यह भी सीखा कि समानुभूति है, समग्रता को पहचानना, यह समझना कि इस ग्रह पर सभी प्राणी एक-दूसरे से जुड़े हैं।

हमने यह समझ प्राप्त की, चूँकि समानुभूति का सद्गुण अर्थात् ऐक्य और समग्रता का ज्ञान संसार में व्याप्त है, इसलिए हरेक व्यक्ति इसकी अच्छाई से लाभान्वित होता है। समानुभूति जीवन-चक्र को बनाए रखने व उसे पोषित करने की धुरी है। जो कोई भी इस धरती पर है, वह अपना जीवन जीने व जीवन में अपने उद्देश्य को पूरा करने का अधिकार रखता है। प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक पशु, प्रत्येक प्राणी इस संसार को विशेष व अनूठा बनाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो, इस संसार में कुछ असाधारण, कुछ ख़ास बात इसलिए है क्योंकि आप इसमें हैं। जब भगवान का प्रकाश इस संसार के प्रिज़्म पर पड़ता है तो वह परावर्तित होकर इन्द्रधनुषी रंग बिखेर देता है, और आप में से हर कोई, अपने-अपने विशिष्ट रंग में चमकने वाली प्रकाश-किरण है।

समानुभूति का सार है, अपने अन्तर की गहराई से हर उस चीज़ को मान्यता देना, उसे स्वीकार करना जो इस ब्रह्माण्ड का भाग है। यह मान्यता, यह स्वीकृति उदित होती है जब हम यह पहचान लेते हैं कि प्रत्येक जीवन—हमारा अपना जीवन और दूसरों का जीवन महत्त्वपूर्ण व अनमोल है, और जब हम अनन्त प्रकार के जीवों को फलने-फूलने देते हैं।

ईशावास्य उपनिषद् की सिखावनी है :

> ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
> तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
>
> इस चराचर जगत की सभी वस्तुओं में परमेश्वर का वास है
> और सभी वस्तुएँ परमेश्वर से आवृत हैं।
> इन सब से अनासक्त रहते हुए और त्याग का अभ्यास करते हुए,
> इन सब में सुखानुभूति करो।
> जो दूसरों का है, उसे पाने की चेष्टा मत करो।[१]

इस श्लोक की एक उद्बोधक बात यह है कि यह सुखानुभूति करने और अनासक्त रहने या त्याग करने [छोड़ देने] के बीच के सम्बन्ध के विषय में बताता है। अकसर हम यह सोचते हैं कि वस्तुओं को प्राप्त करना, उनका संचय करना हमारे सुख के लिए आवश्यक है। किन्तु यह श्लोक हमें परामर्श देता है कि हम इस बारे में पुनः विचार करें।

इससे एक कहावत याद आती है, 'आधी छोड़ पूरी को धावे, आधी रहे न पूरी पावे।' जब आप सब कुछ पाने की चाह में दौड़ते हैं, जब आप जितना हाथ में आ सके उतना झपट लेने की कोशिश करते हैं, जब आप यह माँग करते हैं कि अन्य हर व्यक्ति और हर चीज़ आपके ही सिद्धान्तों या आदर्शों को माने या उनके अनुसार ही चले तो आप वह सब कुछ गँवा बैठते हैं जो आपके पास पहले से है। वहीं दूसरी ओर, जब आप अपने हृदय के खुलेपन से प्रेरित होकर कार्य करते हैं तो आप केवल उसी को थामे रखते हैं जो ज़रूरी व हितकारी है और बाकी सब कुछ छोड़ पाते हैं, जाने दे पाते हैं। अपने संसार को अपने क़ाबू में रखने की आपके अन्दर जो प्रबल इच्छा है, उसे आप छोड़ पाते हैं।

'छोड़ देना' यह क्रियाशब्द, आम तौर पर बोलचाल की भाषा का एक भाग बन गया है; यह शब्द इतनी बार और इतने विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त होता है कि कभी-कभी इसका अर्थ अस्पष्ट व धुँधला लगता है। 'छोड़ देना' यह अवधारणा किस प्रकार आपके दैनिक जीवन में मौजूद हो सकती है, इस बात को समझने में आपको मदद मिले इसलिए यहाँ एक सरल उदाहरण है। मान लीजिए, आपको यह पता चलता है कि आपके कुछ पसन्दीदा व्यंजन अब आपके लिए उपयुक्त नहीं हैं और उन्हें खाने से वे पदार्थ आपके शरीर में विष बनकर आपको रोगी बना देंगे। तब आप अपने स्वास्थ्य का विचार कर, शरीर की मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए एक निर्णय ले सकते हैं कि आप उन पदार्थों को खाना छोड़ देंगे जो किसी समय आपके मनपसन्द हुआ करते थे। आप ऐसा करते हैं ताकि आपका स्वास्थ्य अच्छा रहे और आप दीर्घायु हों।

इसी प्रकार, जब भी आपको लगे कि 'छोड़ देना' यह अवधारणा बहुत ही अस्पष्ट है, तो किसी ऐसे उदाहरण के बारे में सोचें जिससे आपके लिए यह अवधारणा ठोस हो जाए।

***

आइए, हम समानुभूति के विभिन्न अर्थों के अपने अन्वेषण को आगे बढ़ाते हैं। अब हम इसके तीसरे पहलू के बारे में जानेंगे।

समानुभूति सन्तुलन व समस्थिति का अनुभव है।

एक ओर, हम सब 'सन्तुलन' शब्द के प्रचलित अर्थ को जानते ही होंगे जो है, किसी चीज़ के दो या दो से अधिक पक्षों का बराबर होना या किसी वस्तु या व्यक्ति का स्थिर बने रहना। तथापि, हम सन्तुलन को अपने ऊपर किस प्रकार लागू करते हैं, इसके अनुसार सन्तुलन के बारे में हममें से प्रत्येक की सम्भवतः अपनी ही एक समझ होगी। अपने अध्ययन व अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर, तथा

उसके फलस्वरूप हमने जो ज्ञान अर्जित किया है और जो दृष्टिकोण विकसित किया है उसके अनुसार, सन्तुलन के प्रति हममें से हर एक के अपने मत, विचार व धारणाएँ हैं।

हमारे प्रत्येक दृष्टिकोण का अपना ही महत्त्व है। तथापि, समानुभूति के हमारे अध्ययन से सम्बन्धित सन्तुलन का तात्पर्य जिससे है, वह है, मन का सन्तुलन, मन में सन्तुलन, मन के विषय में सन्तुलन। निस्सन्देह, यह सद्‌गुणों के विषय में हमारी समझ के अनुरूप ही है जिनका विकास करने के लिए श्रीगुरुमाई हमें सिखाती हैं। हरेक सद्‌गुण का स्रोत हमारे अन्तर में ही है; अतः इसका तात्पर्य भी यही है कि समानुभूति सर्वप्रथम अन्तर में ही अंकुरित होनी चाहिए।

अतः, यह सद्‌गुण पुष्पित-पल्लवित होकर संसार में अपना कार्य कर सके इसके लिए हममें से हर एक को मन के सन्तुलन का विकास करना ही होगा। यह कार्य है, निरन्तर परिष्कृत करते रहने का, सतत बारीकी से सुधार करते रहने का। यह कार्य है, निरन्तर सामंजस्य बिठाने का, पुनः-पुनः ठीक करते रहने का। यह कार्य है, निरन्तर जाँच करके सुधार लाते रहने का। यह कार्य है, निरन्तर मूल्यांकन करते रहने का। यह कार्य है, निरन्तर निर्णय लेने का। और यहाँ, 'निरन्तर' शब्द आपको प्रेरणा देगा, आपको प्रोत्साहित करेगा कि आप *आगे बढ़कर इसे करें;* क्योंकि जितना अधिक आप मन की सन्तुलित अवस्था को पाने के अभ्यस्त होंगे, इस स्थिति को बनाए रखने की आपकी क्षमता उतनी ही अधिक होगी। आप इस स्थिति में रहते हुए अपने दैनिक व्यवहार अधिक कुशलता से कर सकेंगे और अपने दैनिक जीवन के किसी भी प्रकार के, छोटे या बड़े उतार-चढ़ावों से निकलकर सन्तुलन की इस स्थिति में पुनः लौट सकेंगे।

समानुभूति, वह सद्‌गुण है जो श्रीगुरुमाई ने अपने जन्मदिवस पर प्रदान किया है। इस सद्‌गुण के अपने अध्ययन को जारी रखने के लिए, आइए अब हम श्रीभगवद्‌गीता में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा प्रदान की गई एक सिखावनी पर अपने मन को केन्द्रित करते हैं।

कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि पर भगवान श्रीकृष्ण और उनके शिष्य अर्जुन के बीच संवाद हो रहा है। संसार में धर्म की रक्षा करने के अपने क्षत्रिय-धर्म को निभाना अर्जुन के लिए आवश्यक है, किन्तु अपने ही सगे-सम्बन्धियों के साथ युद्ध करने के विचार से वह अत्यन्त व्यथित है। भगवान श्रीकृष्ण ने युद्ध के दौरान अर्जुन के सारथी की भूमिका निभाई थी। वे अर्जुन से कहते हैं :

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥

अपनी आत्मा में अवस्थित रहते हुए, वह सम रहता है, सुख और दुःख में वह शमस्थिति में रहता है। वह पत्थर, लोहे और सुवर्ण को एकसमान देखता है, और जो भी प्रिय हो या अप्रिय हो, उसे भी एकसमान देखता है। निन्दा और प्रशंसा से अप्रभावित, वह धीर-पुरुष है, बुद्धिमान है।[२]

हमने, अमी और गरिमा ने श्रीभगवद्गीता को कई बार पढ़ा है व उसका पाठ किया है, आपमें से कई लोगों की ही तरह जो इस ग्रन्थ को पढ़ते व सीखते हुए बड़े हुए हैं या फिर उन लोगों की तरह जिन्होंने इस शास्त्र का बड़ी रुचि के साथ अध्ययन किया है। परन्तु समानुभूति पर इस व्याख्या को लिखने के उद्देश्य से इस श्लोक का प्रयोग करने पर हमारे लिए ज्ञान व समझ का नया द्वार खुल गया है। समानुभूति के सन्दर्भ में इस श्लोक को देखना ऐसा है जैसे हम इसे बिल्कुल पहली बार पढ़ रहे हों। भगवान श्रीकृष्ण अपने शिष्य अर्जुन को जो यह उपदेश दे रहे हैं, उसने हमें मुग्ध कर दिया है, हमें मोह लिया है!

इस श्लोक को पहली बार पढ़ने पर भगवान श्रीकृष्ण की सिखावनी को व्यवहार में उतारना एक बहुत कठिन कार्य लग सकता है, है न? यदि आप इस सिखावनी को साधक की दृष्टि से नहीं देख रहे हैं तो हो सकता है कि आप अपनी क्षमता पर सवाल खड़े कर लें और सोचने लगें, “भगवान श्रीकृष्ण जिस स्थिति को पाने के लिए कह रहे हैं, सब चीज़ों को समरूप देखना, क्या उस स्थिति को पाना मेरे बस की बात है?” हो सकता है आप उलझन में पड़ जाएँ कि पत्थर, लोहे और सुवर्ण को एकसमान कैसे देखें। आप पूछ सकते हैं, “क्या वे अलग-अलग नहीं हैं?” सदियों से लोगों ने इनमें से प्रत्येक तत्त्व का एक विशेष मूल्य निर्धारित कर दिया है। परिणामस्वरूप, इन तत्त्वों को हम इस दृष्टि से देखने लगे हैं कि इनका मूल्य मूलतः एक-दूसरे से भिन्न ही है।

याद है, भाग १ में हमने यह कहा था कि हर एक इस ब्रह्माण्ड का भाग है और ब्रह्माण्ड हमारा भाग है? आइए, हम उसी ज्ञान को यहाँ पर लागू करें। इस सौरमण्डल में और इस पृथ्वी पर सभी चीज़ों में, जिनमें हमारे शरीर भी शामिल हैं, वही रासायनिक तत्त्व मौजूद हैं जो सुदूर नक्षत्रों में मौजूद हैं। अतः, सर्वाधिक मूलभूत अर्थ में हम सभी समान *हैं*। इस दृष्टिकोण को अपनाने से हमें उस सच्चाई की झलक मिलती है जो भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं।

तथापि, जब हम एक-दूसरे में दिखाई देने वाली सतही भिन्नताओं को अलग-अलग तरह से महत्त्व व ध्यान देते हैं तो इससे हर एक व्यक्ति और वस्तु को समरूप में देखने की हमारी क्षमता पर असर होता है। यह संसार के प्रति हमारे दृष्टिकोण को संकुचित कर देता है और फिर हमें ऐसा महसूस होने लगता है कि हम अलग हो गए हैं। हम केवल अपने और अपने क़रीबी लोगों के हित व कुशलक्षेम पर ही अधिकाधिक केन्द्रित होते जाते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि इस ब्रह्माण्ड की *सभी* चीज़ें आपस में जुड़ी हुई हैं, वे एक-दूसरे पर निर्भर हैं। यह मानसिकता, यह *भेददृष्टि* हमें अपनी आत्मा से दूर ले जाती है, इस मूलभूत सत्य से दूर ले जाती है कि भगवान शिव ने स्वयं ही अनेक रूप धारण किए हैं और वे ही यह विश्व व इस विश्व की हर वस्तु बन गए हैं।

श्रीभगवद्गीता के इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण उस व्यक्ति की स्थिति का वर्णन करते हैं जो सब कुछ समरूप देखता है और वे कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति आत्मा में अवस्थित है। तो आत्मा में अवस्थित होने का क्या अर्थ है? शेक्सपीअर का एक कथन है, "यही तो सबसे बड़ी समस्या है।" यदि हम आत्मा में अवस्थित *हो सकें* तो यह *निश्चित रूप से* हमारा अपना अनुभवयुक्त ज्ञान होगा। संगीत का एक विद्यार्थी अपने शिक्षक से पूछ सकता है, "मैं अमुक वाद्ययन्त्र को आपकी तरह कब बजा पाऊँगा?" तो संगीत-शिक्षक उस विद्यार्थी को क्या उत्तर देंगे? जी हाँ, बिल्कुल सही है—अभ्यास, अभ्यास, अभ्यास।

उसी प्रकार, आत्मा में अवस्थित होने के लिए, साधना, साधना, साधना का महत्त्व सर्वोपरि है। साधना भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न रूप ले सकती है, यह इस पर निर्भर है कि वे किस पर केन्द्रण करने का चुनाव करते हैं। सिद्धयोग पथ पर, कुछ लोगों के लिए यह सतत मन्त्र-जप है। कुछ के लिए यह दैनिक ध्यान है। कुछ लोगों के लिए यह शास्त्रों का नियमित व दृढ़तापूर्वक अध्ययन करना है। कुछ के लिए यह नियमित स्वाध्याय यानी नियमित स्तोत्र-पाठ करना है, और कुछ लोगों के लिए यह बस सेवा करना है, और कुछ नहीं। साधना। जिस भी अभ्यास को आप अपने केन्द्रण के लिए निर्धारित करते हैं, वही आपकी साधना बन जाती है। और सिद्धयोग की सिखावनियों के अपने ज्ञान के आधार पर हम दृढ़ विश्वास के साथ कह सकते हैं कि जब आप अपनी साधना में निरन्तरता बनाए रखेंगे तो आपको वह अनुभूति होगी जिसके विषय में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं। आप शमस्थिति का अनुभव करेंगे।

जब हम इस व्याख्या पर कार्य कर रहे थे, हम 'शमस्थिति' शब्द पर आपस में चर्चा कर रहे थे कि यह कितना सुन्दर और विलक्षण शब्द है। इसके लिए अंग्रेज़ी शब्द है *equipoise* [एक्विपॉइज़्]। हालाँकि यह सभी अंग्रेज़ी शब्दकोशों में पाया जाता है, हमने ग़ौर किया कि वर्ष १९९५ के अपने नववर्ष-सन्देश के

माध्यम से श्रीगुरुमाई ने ही लोगों का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट किया था। हमने आपके साथ साझा करने के लिए एक सिखावनी चुनी है जो वर्ष १९९५ के दीप्तिमान सन्देश को विस्तार से समझाते हुए गुरुमाई जी ने प्रदान की थी।

शमस्थिति क्या है?

मन की सन्तुलित स्थिति,
स्वभाव की साम्यावस्था,
आत्मसंवरण,
अचल स्थिरता,
एक ऐसी स्थिति जिसमें
सब कुछ गतिशील होते हुए भी
प्रशान्त है;
जिसमें सब कुछ गतिशील है,
फिर भी स्थिर है, शान्त है।

गुरुमाई जी के शब्द एक धारणा की तरह हैं।

आप अपने मन की सन्तुलित स्थिति का चित्रण इस तरह कर सकते हैं, **स्वभाव की साम्यावस्था।**

आप अपने मन की सन्तुलित स्थिति का चित्रण इस तरह कर सकते हैं, *आत्मसंवरण।*

आप अपने मन की सन्तुलित स्थिति का चित्रण इस तरह कर सकते हैं, अचल स्थिरता।

आप अपने मन की सन्तुलित स्थिति का चित्रण इस तरह कर सकते हैं, *एक ऐसी स्थिति जिसमें सब कुछ गतिशील होते हुए भी प्रशान्त है।*

आप अपने मन की सन्तुलित स्थिति का चित्रण इस तरह कर सकते हैं, एक ऐसा आवास जहाँ सब कुछ गतिशील है फिर भी स्थिर और शान्त है।

अपने मन की सन्तुलित स्थिति के विषय में ऐसा सोचें कि यह महासागर की गहराइयों की तरह स्थिर और शान्त है, सतही लहरों की गतिशीलता से अविचलित है।

इस बारे में सोचें कि जब समुद्र शान्त होता है तो आप तैरने में, खेलने में, उछल-कूद करने में, इसकी मृदुल लहरों पर सवार होकर नाव द्वारा दूर क्षितिज तक सैर करने में या तट पर बैठकर जल को निहारते हुए इसकी प्रशान्ति को अपनी सत्ता में आत्मसात् करने में सुरक्षित महसूस करते हैं। उसी प्रकार, जब आप शमस्थिति में होते हैं, जब आपका मन पूरी तरह सन्तुलित होता है और परिवर्तन के झोंकों से अप्रभावित, अक्षुब्ध रहता है, तब आपको अपनी ही संगति अच्छी लगती है। और जब आप अपनी संगति की क़द्र करते हैं तो अन्य लोग उसकी क़द्र करते हैं जो आप उनके साथ बाँटते हैं। आपकी शमस्थिति से विश्वास पनपता है; वे आपकी संगति में सुरक्षित महसूस करते हैं।

जब आप इस स्थिति में होते हैं तो बहुत ही स्वाभाविक रूप से आपमें से अच्छाई प्रसरित होती है और भले ही यह अच्छाई *आपके* अन्दर से ही निकल रही होती है, आप भी उसका रसास्वादन करते हैं जो आपकी सत्ता अभिव्यक्त कर रही होती है। इसमें सच्चाई होती है। इससे दूसरों में आपके प्रति खुलापन आ जाता है। आपकी उपस्थिति मात्र से अन्य लोगों को यह ज्ञात हो जाता है कि आपमें वह धैर्य व बल है कि आप हर परिस्थिति में, हर तरह से उनके साथ हैं। आप सचमुच निष्ठा और गम्भीरता के साथ सुनते हैं। आप सचमुच बड़े ध्यान से और बिना आकलन किए सुनते हैं। आप सचमुच मैत्रीभाव से सुनते हैं। आप सचमुच अपने हृदय से सुनते हैं। सुनना समानुभूति का मूलभूत अंग है और यह सुनना मात्र श्रवण-प्रक्रिया तक ही सीमित नहीं है।

वर्ष २०२२ के अपने नववर्ष-सन्देश में श्रीगुरुमाई हमें अपनी साधना में सुनने के महत्त्व के बारे में सिखाती हैं। ‘सुनो’ गुरुमाई जी के सन्देश का मुख्य शब्द है। यह कितना छोटा-सा शब्द है, है न? यह केवल दो अक्षरों से बना है। हमने ‘मधुर सरप्राइज़, २०२२’ में यह भी सीखा कि मानव-शरीर में श्रवण का जो भौतिक उपकरण है वह कितना छोटा है; यह कई प्रकार की छोटी और जटिल संरचनाओं से मिलकर बना है जो आपस में एक-दूसरे के साथ ताल-मेल बैठाकर कार्य करती हैं। तथापि, सुनने की प्रक्रिया किसी चमत्कार से कम नहीं है। किस प्रकार सुनना चाहिए, यह सीखने की साधना, निश्चित रूप से छोटी या मामूली नहीं है। हम जो कुछ भी सुनते हैं, उसकी छाप बहुत बड़ी और दीर्घकालीन हो जाती है।

उदाहरण के लिए, विचार कीजिए जब आप किसी महत्त्वपूर्ण परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं या आप प्रकृति में सैर कर रहे हैं, या किसी नई नौकरी का काम सीख रहे हैं। इन सभी स्थितियों में आपके लिए

यह हितकर होता है कि आप बड़े ध्यान से सब सुनें। जब आप पूरी तरह सुनेंगे—यानी आप जो पुस्तक पढ़ रहे हैं उसके शब्दों को अपने अन्दर ग्रहण करेंगे, या जब आप प्रकृति के साथ जुड़ेंगे, या जिन शिक्षक से आप अपने काम के बारे में सीख रहे हैं, उन्हें ध्यान से सुनेंगे, केवल तब ही आप उस जानकारी को समझ पाएँगे जो आपको मिल रही है, आप उसका परीक्षण कर पाएँगे, और जो ज्ञान आपको मिला है, उसे आत्मसात् कर लागू कर पाएँगे।

'सुनना' समानुभूति का अभ्यास करने व उसका अनुभव करने के लिए भी अत्यावश्यक है। सुनने के द्वारा ही हम वह महसूस कर पाते हैं जो सामने वाला व्यक्ति महसूस कर रहा है, सही है न? सुनने के द्वारा ही हम दूसरों के साथ उनकी यात्रा में हर क़दम पर पूरी तरह उनके साथ हो सकते हैं, सही है न? समानुभूति का अभ्यास करने की कुंजी है, 'सुनना', इस बात पर हम जितना बल दें, कम ही है। सुनना *ही* कुंजी है।

२४ जून के लिए श्रीगुरुमाई द्वारा प्रदान किए गए सद्‌गुण का हमारा अभ्यास इस वर्ष के लिए गुरुमाई जी के नववर्ष सन्देश के हमारे अभ्यास के साथ-साथ चल रहा है। हर क्षण मस्तिष्क में, मन में, शरीर के सभी अंगों में और हृदय में बहुत अधिक गतिविधियाँ हो रही होती हैं। आप कितना भी चाहें कि ऐसा न हो, एक मानव के अन्दर हमेशा कुछ-न-कुछ खड़खड़ाहट चलती ही रहती है। सुनने तथा समानुभूति का अनुभव करने व उसे अभिव्यक्त करने के लिए उन सभी परतों को भेदने की ज़रूरत होती है जो मन को घेर लेती हैं। सुनने के लिए यह अत्यावश्यक है कि आपको अपने शरीर में और अपने मनोभावों से सम्बन्धित जो कुछ भी सही व सहज न लग रहा हो, जो उचित सन्तुलन में न हो, आप [पल भर के लिए ही सही] उसके परे चले जाएँ, उससे बाहर निकलें।

***

बार-बार मन के सन्तुलन का विकास कर समानुभूति का अनुभव किया जाता है। अपने अन्तर में बार-बार शमस्थिति का निर्माण कर समानुभूति को प्रकट किया जाता है। सन्तुलन का विकास करना और शमस्थिति का निर्माण करना : यही है समानुभूति।

यह जानना बड़ा रोचक है कि 'समस्थिति' [या 'शमस्थिति'] शब्द में उपसर्ग 'सम' का अर्थ है, 'समान' जो कि सन्तुलित होने के भाव को दर्शाता है। अतः, 'शमस्थिति' अपने आपमें आन्तरिक और बाह्य, सन्तुलन के इन दोनों पहलुओं को समाए हुए है। जब हमने, अमी और गरिमा ने यह देखा तो हमारे अन्दर कुछ कौंध-सा गया, हमें एक स्फुरणा महसूस हुई; हमने 'अहा!' के सुखद क्षण का अनुभव किया!

हमें भारत के तपस्वियों की छवियाँ और कहानियाँ याद आईं जो हमने देखी व पढ़ी थीं। ये तपस्वी घण्टों, दिनों, यहाँ तक कि *सैकड़ों वर्षों तक* एक पैर पर—वृक्षासन में—खड़े रहते थे। आसन में स्थिर रहकर वे मन्त्रपाठ, या जप, या ध्यान करते। उनका शरीर पूर्ण सन्तुलित व स्थिर होता, ठीक उन वृक्षों के तनों की तरह जिनके नीचे वे अपनी तपस्या कर रहे होते—उनके तपोबल से वे वृक्ष भी पावन माने जाने लगे। उनका उदाहरण याद करने पर हमें यह समझ आया कि भले ही इन तपस्वियों ने अपनी ख़ुद की आध्यात्मिक प्राप्ति के लिए तपस्या की थी, पर इतनी सदियों के बाद हम भी उनके प्रयत्नों से लाभान्वित हो सकते हैं। उनके उदाहरण से हम भली प्रकार समझ सकते हैं कि भौतिक शरीर में बाह्य रूप से सन्तुलन स्थापित करने का क्या महत्त्व है; इस बाह्य सन्तुलन के द्वारा हम आन्तरिक सन्तुलन का यानी मन के सन्तुलन का विकास कर सकते हैं और शमस्थिति का निर्माण कर सकते हैं।

जब हम, भारत के तपस्वियों के बारे में आपस में चर्चा कर रहे थे, तब एक विचार से दूसरा विचार उभर रहा था और हमें यह एहसास हुआ कि किसी असामान्य भौतिक प्राप्ति के लिए भी मन का सन्तुलन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, जैसे कि माउन्ट ऐवरेस्ट की चोटी पर चढ़ना। जो व्यक्ति इस उद्यम में लग जाते हैं, उन्हें एकाग्रचित्तता, पूर्ण समर्पण, दृढ़निश्चय और पूरे जुनून के साथ न केवल अपने भौतिक शरीर को तैयार करना होता है बल्कि इन्हीं गुणों से उन्हें अपनी अन्तर-स्थिति का भी विकास करना होता है जो कि बाह्य स्थिति की ही तरह स्थिर, मज़बूत और सन्तुलित होनी चाहिए। ध्यान भटकाने वाली किसी भी चीज़ से वे ख़ुद को विचलित नहीं होने दे सकते। यह पक्की नींव, यह सन्तुलन ही है जो उन्हें यह असाधारण सफलता प्रदान करता है।

हमें उन सिद्धयोगी की भी याद आई जो एक निपुण जादूगर हैं, और जिनकी जादूगरी के करतब हमने श्री मुक्तानन्द आश्रम में कई बार देखे हैं। हमने उनके जो करतब देखे हैं, उनमें से एक हमें विशेष रूप से याद आता है जोकि ख़ास तौर पर सन्तुलन का सटीक उदाहरण है। हमें यक़ीन है कि आपमें से कई लोगों ने दूसरे जादूगरों को भी यह करतब दिखाते हुए देखा होगा।

इस करतब में एक मीटर से कुछ लम्बी छड़ी की नोक पर धातु की एक तश्तरी को गोल-गोल घुमाया जाता है। एक बार जब जादूगर उस तश्तरी को सन्तुलित करने में सफल हो जाता है, तब वह पहली छड़ी के नीचे उतनी ही लम्बी दूसरी छड़ी लगाता है। इसी तरह से वह चार *और* छड़ियाँ जोड़ता जाता है जब तक कि घूमती हुई वह तश्तरी उसकी आँखों के स्तर से २० फुट ऊँची न हो जाए। फिर, आपस में जुड़ी इन सभी छड़ियों पर तश्तरी को सन्तुलित रखते हुए, वह इस पूरे सेट-अप को अपने हाथ से अपनी ठोढ़ी पर ले आता है। इस दौरान, तश्तरी पूरे समय घूमती रहती है! कुछ क्षणों बाद वह छड़ियों

और तश्तरी के इस सेट-अप को फिर से अपने हाथ में लेता है और एक-एक करके छड़ियाँ तब तक हटाता जाता है जब तक कि तश्तरी फिर से उसके हाथ में न आ जाए।

ज़रा सोचिए : सन्तुलन *ज़रा-सा भी* बिगड़ा, पैर हल्का-सा भी फिसला, एकाग्रता ज़रा-सी भी इधर-उधर हुई और तश्तरी ज़ोर-से ज़मीन पर आ गिरेगी। अगर ऐसा हुआ तो दर्शक हँसेंगे, पर यक़ीनन यह हँसी वैसी नहीं होगी जिसकी जादूगर को उम्मीद हो। लेकिन ऐसा नहीं होता; तश्तरी पूरे समय सन्तुलित रहती है। जिन सिद्धयोगी जादूगर का यह करतब हमने देखा है, वे बताते हैं कि इसमें पारंगतता हासिल करने में उन्हें आठ वर्ष लगे थे। उन्होंने तश्तरी को बस एक सेकैन्ड के लिए सन्तुलित रखने से शुरुआत की थी और फिर धीरे-धीरे वे इस अवधि को बढ़ाते गए, और आख़िर में वे पाँच मिनट तक तश्तरी को सन्तुलित बनाए रखने लगे। उन्होंने हमें बताया, "मैं बाह्य सन्तुलन अच्छी तरह से तब बनाए रख पाता हूँ जब मैं अन्दर से सन्तुलित होता हूँ।"

ये दोनों उदाहरण—तपस्वियों का और जादूगर का—सन्तुलन की अद्‌भुत उपलब्धियों को दर्शाते हैं। और जिस बात पर ध्यान देना अत्यावश्यक है, वह यह कि न ही उन तपस्वियों ने और न ही इन जादूगर ने रातोरात यह अद्‌भुत उपलब्धि हासिल की। सन्तुलन की अपनी-अपनी तकनीकों पर प्रभुत्व हासिल करने के लिए उन्हें जिसकी आवश्यकता थी, वह और क्या हो सकता था?—अभ्यास!

श्रीगुरुमाई कहती हैं :

> साधना यानी अनुशासित ढंग से पथ को आलोकित करना; यह तुम्हें शमस्थिति की ओर ले जाती है; शमस्थिति, जिसे न तो आसानी से समझा जा सकता है और न ही आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। फिर दैनिक जीवन की उथल-पुथल के बीच, तुम इस गहन साम्यावस्था का, इस अविचल सन्तुलन का विकास करते रहते हो और उससे शक्ति लेते रहते हो।

क्रमशः...

© २०२२ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।

[1] ईशावास्य उपनिषद्, १; अंग्रेज़ी भाषान्तर © २०२२ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन।

[2] श्रीभगवद्‌गीता, १४.२४; अंग्रेज़ी भाषान्तर © २०२२ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन।

[3] गुरुमाई चिद्विलासानन्द, हृदय की साधना [चित्‌शक्ति पब्लिकेशन्स, २०१२], पृ १७।